रविवारीय

डॉ. ब्रह्मदीप अलूने
विदेशी मामलों के जानकार

बांग्लादेश में अल्पसंख्यकों के धार्मिक स्थलों पर हमले, सामाजिक और राजनीतिक दबाव तथा कट्टरपंथी संगठनों की सक्रियता ने इस भय को और गहरा किया है की यह देश पूर्ण इस्लामवाद की और तेजी से बढ़ रहा है. यदि कट्टरपंथी सोच को लगातार राजनीतिक संरक्षण मिलता है तो स्थिति और संवेदनशील हो सकती है. बांग्लादेश में अगले महीने संसदीय चुनाव होने वाले हैं, जो शेख हसीना की पार्टी आवामी लीग के प्रतिबंध और सत्ता परिवर्तन के बाद पहला बड़ा राजनीतिक परीक्षण होगा. चुनावी तैयारी के बीच नेशनल सिटीजन पार्टी और जमात-ए-इस्लामी जैसे कट्टरवादी तत्वों के बीच गठबंधन अल्पसंख्यकों की चिंताओं का बढ़ा रहा है. जमात-ए-इस्लामी का इतिहास लंबे समय से कट्टर इस्लामी विचारधारा के साथ जुड़ा रहा है और यह 1971 के स्वतंत्रता संघर्ष में भी विवादों में रही है. उसकी राजनीतिक वापसी धार्मिक कट्टरता की पुनः वृद्धि का जोखिम पैदा कर सकती है. इससे बांग्लादेश के हिन्दूओं और अन्य धार्मिक समूहों की सामाजिक सुरक्षा और अधिकारों पर संभावित नकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है.

बांग्लादेश में हिंदुओं पर अत्याचार कब रुकेगा?

बांग्लादेश के निर्माता शेख मुजीबुर्रहमान इसे एक आधुनिक, लोकतांत्रिक और धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र बनाना चाहते थे. 1971 में जब पूर्वी पाकिस्तान से अलग होकर बांग्लादेश अस्तित्व में आया था, तब यहां हिंदू समुदाय की आबादी लगभग बीस फीसदी से अधिक थी. यह संख्या आज घटकर नौ फीसदी के आसपास सिमट चुकी है. यह गिरावट आकस्मिक नहीं, बल्कि लगातार जारी सामाजिक-राजनीतिक दबाव, हिंसा, कट्टरवाद, कानूनी विसंगतियों और भय के सम्मिलित प्रभाव का परिणाम है. यदि हिन्दूओं पर होने वाले उत्पी ?न को नहीं रोका गया आने वाले दशकों में बांग्लादेश में हिंदू समुदाय का अस्तित्व इतिहास के पन्नों तक सीमित रह जाएगा. बीते कुछ दशकों में बांग्लादेश में इस्लामी कट्टरपंथी विचारधारा का प्रभाव गहरा हुआ है. जमात-ए-इस्लामी जैसे संगठन, जिनकी वैचारिक जड़ें पाकिस्तान समर्थक राजनीति से जुड़ी रही हैं, समाज में एक ऐसी कठोर धार्मिक सोच को विस्तार दे रहे हैं जो बहुलता, सहिष्णुता और विविधता के विरुद्ध खड़ी है. यह वही संगठन है जिसने अफगानिस्तान में तालिबान के कब्जे के बाद बांग्लादेश बनेगा अफगानिस्तान जैसे नारे गढक़र युवाओं को कट्टरता की ओर उकसाने का प्रयास किया. इसी विचारधारा के परिणामस्वरूप ईशनिंदा के नाम पर हिंसा, अल्पसंख्यकों को निशाना बनाना, धार्मिक स्थलों पर हमले और सामाजिक तनाव की घटनाएं बार-बार सामने आती रही हैं. विभिन्न अवसरों पर दुर्गा पूजा जैसे बड़े उत्सवों के दौरान मंदिरों और पंडालों को निशाना बनाया गया, मूर्तियों को तोड़ा गया और भय का वातावरण पैदा किया गया. कई घटनाओं में पुलिस की निष्क्रियता और प्रशासन के देर से हस्तक्षेप ने हालात को और बिगाड़ा है.

यह हिंसा किसी एक घटना या किसी विशेष कालखंड तक सीमित नहीं रही. बांग्लादेश का नौआखाली क्षेत्र हो या चिटगाँग, सिलहट और खुलना में धार्मिक तनाव और हिंसा की घटनाएं समय-समय पर उभरती रही हैं. आज भी अनेक हिन्दू परिवारों के लिए अपने त्योहार मनाना साहस का काम हो गया है. सबसे चिंताजनक तथ्य यह है कि ये घटनाएं अब

पाकिस्तान की एजेंसियों द्वारा बांग्लादेश को एक वैकल्पिक रणनीतिक आधार के रूप में उपयोग करने की कोशिशें क्षेत्रीय सुरक्षा के लिए भी खतरा हैं. इससे भारत-बांग्लादेश संबंध, सीमा सुरक्षा और दक्षिण एशिया की स्थिरता पर सीधा प्रभाव पड़ सकता है. यदि कट्टरपंथ को राजनीतिक संरक्षण मिला तो बांग्लादेश की धर्मनिरपेक्ष पहचान कमजोर पड़ेगी और अल्पसंख्यकों का पलायन बढ़ सकता है. बांग्लादेश में वर्तमान हालात इतने खराब है की आने वाले वर्षों में यहां हिंदू आबादी बेहद कम हो जाएगी या समाप्त भी हो सकती है.

केवल भीड़ की भावनात्मक उत्तेजना तक सीमित नहीं दिखतीं, बल्कि इनके पीछे संगठित प्रयासों और योजनाओं के संकेत मिलते हैं. ईशनिंदा के नाम पर घर जलाना, दुकानों पर कब्ज़ा करना, संपत्तियों पर दावा ठोकना और भय पैदा कर पलायन के लिए मजबूर करना, इस व्यापक प्रक्रिया का हिस्सा है. बांग्लादेश से हिंदू पलायन का एक सबसे प्रमुख कारण संपत्ति संबंधी असुरक्षा है. वेस्टेड प्रॉपर्टी एक्ट ने हिन्दूओं की भूमि को कानूनी रूप से असुरक्षित बना दिया है. 1965 से 2006 के बीच लगभग 26 लाख एकड़ हिंदू स्वामित्व वाली भूमि पर अवैध कब्जा हुआ है. हालांकि 2001 में वेस्टेड प्रॉपर्टी रिटर्न एक्ट पारित हुआ, किंतु इसके क्रियान्वयन की कमी ने इसे लगभग निष्प्रभावी बना दिया. हालांकि कुछ कानूनों में सुधार किए गए, रिटर्न एक्ट लाया गया, परंतु उसका क्रियान्वयन आज भी कमजोर है. प्रशासनिक उदासीनता और राजनीतिक इच्छाशक्ति की कमी ने इसे लगभग निष्प्रभावी बना दिया. इस प्रकार संपत्ति का संकट केवल आर्थिक नहीं, बल्कि अस्तित्व और सम्मान का प्रश्न बन गया है.

बांग्लादेश की राजनीति लंबे समय से ध्रुवीकरण का शिकार रही है. सत्ता परिवर्तनों, आपसी संघर्षों और वैचारिक टकरावों ने एक स्थिर सामाजिक माहौल के निर्माण को कठिन बना दिया है. राजनीतिक अस्थिरता के समय अल्पसंख्यक समुदाय सबसे आसान निशाना बन जाते हैं. कई बार हिंदूओं को किसी एक राजनीतिक धड़े का समर्थक बताकर बदले की कार्रवाई की जाती है. इसके अतिरिक्त, पिछले वर्षों में सरकार के परिवर्तन और प्रशासनिक ढांचे में आए असंतुलन का लाभ कट्टरपंथी समूहों ने उठाया है. इससे कानून-व्यवस्था की विश्वसनीयता कम हुई और अल्पसंख्यकों का प्रशासन पर भरोसा कमजोर पड़ा. परिणामस्वरूप, कई बार वे शिकायत दर्ज कराने से भी हिचकिचाते हैं, क्योंकि उन्हें लगता है कि न्याय के बजाय प्रतिशोध का खतरा बढ़ जाएगा.

भारत और बांग्लादेश के बीच करीब चार हजार किलोमीटर से अधिक लंबी सीमा है. यह सीमा केवल भूगोल नहीं, बल्कि जनसांख्यिकी, अर्थव्यवस्था और सुरक्षा की दृष्टि से भी अत्यंत संवेदनशील है. जब बांग्लादेश में हिंदूओं पर संकट बढ़ता है, तो इसका प्रभाव भारत के पूर्वोत्तर और बंगाल क्षेत्रों पर भी पड़ता है. अवैध घुसपैठ, मानव तस्करी, कट्टर विचारधारा का प्रसार और अवैध गतिविधियाँ क्षेत्रीय स्थिरता के लिए चुनौती बनती हैं. बांग्लादेश का हिंदू समुदाय आज भी अपने अस्तित्व के लिए जूझ रहा है. त्योहार मनाने से लेकर अपनी संपत्ति बचाने और पहचान सुरक्षित रखने तक, हर स्तर पर उन्हें चुनौतियों का सामना है. मंदिरों पर हमले, मूर्तियों का अपमान, व्यापारिक प्रतिष्ठानों पर कब्जा और सामाजिक उत्पीडऩ के कारण वे निरंतर भय और असुरक्षा के माहौल में जी रहे हैं. कई हिंदू संगठन कहते हैं कि यदि राज्य की मशीनरी समय पर और सख़्त कार्रवाई करे, तो हालात सुधर सकते हैं. परंतु प्रशासनिक निष्क्रियता, राजनीतिक दबाव और सामाजिक संकोच के कारण कई बार अपराधियों को संरक्षण मिलता है और पीड़ितों को न्याय से वंचित रहना पड़ता है.

बांग्लादेश का संविधान उसे धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र घोषित करता है, परंतु वास्तविकता यह है कि सामाजिक वातावरण में कट्टरता का प्रभाव बढ़ रहा है. यदि अल्पसंख्यकों की सुरक्षा, समान अधिकार, संपत्ति की गारंटी और धार्मिक स्वतंत्रता के लिए ठोस और निर्णायक कदम नहीं उठाए गए, तो बांग्लादेश की धर्मनिरपेक्ष पहचान गंभीर संकट में पड़ सकती है. कठोर कानून, त्वरित न्याय, प्रशासनिक जवाबदेही और सामाजिक सुधार की दिशा में सशक्त कदम उठाने की जरूरत है लेकिन कट्टरपंथी तत्वों के प्रभाव के चलते यह संभव नहीं दिखाई पड़ता. बांग्लादेश में हिंदू समुदाय की स्थिति किसी एक घटना का परिणाम नहीं, बल्कि दशकों से चली आ रही एक लंबी प्रक्रिया का दुष्परिणाम है. लगातार हिंसा, कानूनी अन्याय, राजनीतिक अस्थिरता और कट्टरपंथ के बढ़ते प्रभाव ने उन्हें अपने ही देश में असुरक्षित बना दिया है. यदि यह प्रवृत्ति नहीं रुकी, तो बांग्लादेश न केवल अपने अल्पसंख्यक समुदाय को खो देगा, बल्कि अपनी ऐतिहासिक विरासत, बहुलतावादी सामाजिक ताने-बाने और लोकतांत्रिक मूल्यों से भी दूर होता चला जाएगा.

बांग्लादेश की राजनीति में अवामी लीग को अपेक्षाकृत अल्पसंख्यक हितैषी माना जाता रहा है. उसकी सरकार के दौरान अल्पसंख्यकों की सुरक्षा, सांप्रदायिक सद्भाव और धर्मनिरपेक्ष चरित्र को बनाए रखने के कुछ ठोस प्रयास हुए. लेकिन जैसे ही राजनीतिक समीकरण बदलते हैं या विपक्षी दलों को मजबूती मिलती है, अल्पसंख्यकों, विशेषकर हिंदुओं के बीच असुरक्षा की भावना गहरी हो जाती है. इस समय बांग्लादेश की राजनीति और समाज में पाकिस्तान के बढ़ते प्रभाव ने अल्पसंख्यकों के लिए नई चिंताएं खड़ी कर दी हैं. पाकिस्तान समर्थित कट्टरपंथी संगठनों, विचारधारा और वित्तीय नेटवर्क के विस्तार ने बांग्लादेश में इस्लामी कट्टरता को मजबूत किया है. जमात-ए-इस्लामी और उससे जुड़े समूह पाकिस्तान की वही धार्मिक-सांप्रदायिक रणनीति को आगे बढ़ा रहे हैं, जिसका उद्देश्य समाज को कठोर इस्लामी पहचान की ओर मोडऩा है. परिणामस्वरूप हिंदुओं सहित अन्य अल्पसंख्यक समुदायों पर दबाव, भय और असुरक्षा बढ़ी है.

पहचान से उत्तरदायित्व तक

हिंदू समाज और भारत का भविष्य : डॉ. मोहन भागवत

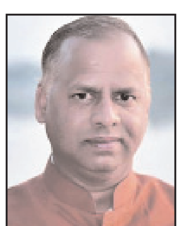

कृष्णमोहन झा

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के शताब्दी वर्ष के अवसर पर भोपाल में आयोजित कार्यक्रम केवल औपचारिक आयोजन नहीं थे, बल्कि संघ की वैचारिक यात्रा, सामाजिक दृष्टि और भविष्य की रूपरेखा को समग्रता में सामने रखने वाले महत्वपूर्ण पड़ाव थे. प्रमुख जन गोष्ठी सामाजिक सद्भाव बैठक और युवा संवाद—इन तीनों मंचों से सरसंघचालक डॉ. मोहन भागवत ने समाज, समरसता और युवा शक्ति को जोड़ते हुए राष्ट्र निर्माण का एक स्पष्ट वैचारिक खाका प्रस्तुत किया.

प्रमुख जन गोष्ठी में सरसंघचालक ने जिस केंद्रीय विचार को रेखांकित किया, वह था हिन्दू पहचान . उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि मत, पंथ, संप्रदाय, भाषा और जाति की विविधता के बावजूद हिन्दू पहचान हम सबको जोड़ती है. यह पहचान किसी संकीर्ण धार्मिक परिभाषा तक सीमित नहीं है, बल्कि साझा संस्कृति, साझा पूर्वजों और साझा जीवन मूल्यों से उपजी हुई है. डॉ. भागवत ने समाज की मानसिक अवस्था को चार वर्गों में विभाजित करते हुए कहा कि जब समाज यह भूल जाता है कि वह हिन्दू है, तब विपत्तियाँ आती हैं. इतिहास इस तथ्य का साक्षी है. उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि हिन्दू होना केवल पूजा-पद्धति नहीं, बल्कि एक स्वभाव और जीवन दृष्टि है. धर्म की भारतीय अवधारणा को समझाते हुए उन्होंने कहा कि धर्म का अर्थ *रिलीजन नहीं, बल्कि वह व्यवस्था है

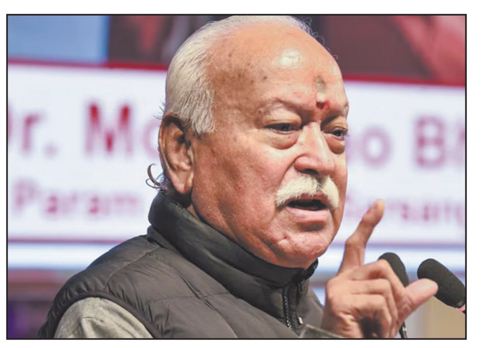

जो सबको साथ लेकर चलती है, सबका उत्थान करती है और समाज को संयम व सद्भाव से जोड़ती है. यही कारण है कि विविध मार्गों के बावजूद लक्ष्य एक रहता है—समरस और सशक्त समाज. इसी वैचारिक धारा का विस्तार सामाजिक सदभाव बैठक में देखने को मिला. कुशाभाऊ ठाकरे सभागार में आयोजित इस बैठक में सरसंघचालक डॉ. मोहन भागवत ने कहा कि सामाजिक सद्भाव कोई नई अवधारणा नहीं है, बल्कि यह भारतीय समाज का स्वभाव रहा है. उन्होंने समाज शब्द की व्याख्या करते हुए कहा कि समाज वह समूह है, जो समान गंतव्य की ओर बढ़ता है. भारतीय समाज की कल्पना सदैव ऐसी रही है, जिसमें जीवन भौतिक और आध्यात्मिक—दोनों दृष्टियों से सुखी हो.

डॉ. भागवत ने इस अवसर पर अत्यंत महत्वपूर्ण बात कही कि कानून समाज को नियंत्रित कर सकता है, लेकिन समाज को जोड़कर रखने का कार्य केवल सदभावना कर सकती है. विविधता के बावजूद एकता को स्वीकार करना ही हिन्दू समाज की पहचान है. उन्होंने कहा कि हिन्दू कोई संज्ञा नहीं, बल्कि एक स्वभाव है—जो मत, पूजा-पद्धति या जीवनशैली के आधार पर टकराव नहीं करता.

उन्होंने समाज को तोड़ने के प्रयासों की ओर संकेत करते हुए कहा कि जनजातीय और अन्य वर्गों को यह कहकर अलग करने का प्रयास किया गया कि वे अलग हैं, जबकि सच्चाई यह है कि हजारों वर्षों से इस भूमि पर रहने वाले सभी लोगों का डीएनए एक है. सद्भाव केवल संकट के समय नहीं, बल्कि निरंतर संवाद, मिलन और परस्पर सहयोग से ही जीवित रहता है. समर्थ का दायित्व है कि वह दुर्बल की सहायता करे—यही सामाजिक सद्भाव की आत्मा है. इस बैठक को संबोधित करते हुए प्रख्यात कथावाचक पंडित प्रदीप मिश्रा ने संघ और समाज के संबंध को आध्यात्मिक दृष्टि से व्याख्यायित किया. उन्होंने कहा कि संघ और शिव के भाव में अद्भुत समानता है. जैसे शिव ने सृष्टि के कल्याण के लिए विषपान किया, वैसे ही संघ प्रतिदिन आरोपों और विरोध का विष पीकर भी संयम और राष्ट्रहित के मार्ग पर चलता रहा है. उन्होंने कहा कि जन्म किसी भी जाति में हो, पहचान अंतत: हिंदू, सनातनी और भारतीय की ही है. पंडित मिश्रा ने धर्मांतरण को केवल वर्तमान नहीं, बल्कि आने वाली पीढ़ियों को प्रभावित करने वाला गंभीर षड्यंत्र बताया और समाज को इसके प्रति सजग रहने का आह्वान किया. 'ग्रीन महाशिवरात्रि' जैसे अभियानों का उल्लेख करते हुए उन्होंने सामाजिक समरसता के व्यावहारिक उदाहरण सामने रखे और कहा कि राष्ट्र निर्माण में सभी को एकजुट होकर आगे बढ़ना होगा.

बेकार, बेकाम नहीं हैं हमारे वृद्धजन

आचार्य गौरव शर्मा
शिमला

सक्सेना जी पीएचई विभाग में चीफ इंजीनियर के पद से रिटायर हुए हैं. किसी समय उनकी तूती बोला करती थी लेकिन उम्र के आखिरी पड़ाव में ना केवल वे अकेले हैं बल्कि वृद्धाश्रम का एक कोना उनका बसेरा बन गया है. कभी करोड़ों का मामला सुलटाने वाले अग्रवाल दंपति की कहानी भी यही है. गणित और अंग्रेजी के प्रोफेसर रहे द्विवेदी दंपति भी उम्र के आखिरी पड़ाव पर वृद्धाश्रम में रह रहे हैं. ये वे लोग हैं जिनकी काबिलियत और अनुभवों से समाज रोशन होता था. उनके अपने बच्चे आज किसी मुकम्मल मुकाम पर हैं तो उनका ही सहारा था. जिन्हें आप माता-पिता कहते हैं, आज वृद्धाश्रम में बिसूर रहे हैं. निराश और हताश भी हैं. ये दो चार लोग नहीं बल्कि वृद्धजनों की पूरी टोली है. आपस में बतिया लेते हैं और वृद्धाश्रम के दरवाजे पर टकटकी लगाये देखते हैं कि कहीं बहू-बेटा तो लेने नहीं आए? पोता-पोती की सूरत याद कर हौले से मुस्करा देते हैं लेकिन गोद में उठाकर लाड़ ना कर पाने की हसरत उनके चेहरे पर मायूसी बनकर उभर आती है. यह कहानी घर-घर की होती जा रही है. थोड़ा पैसा, थोड़ा रसूख कमाने के साथ ही वृद्धजन बोझ बनने लगते हैं. और जल्द ही तलाश कर लेते हैं उनके लिए वृद्धाश्रम का कोई कोना. पहले पहल आना-जाना भी होता है लेकिन धीरे-धीरे वह भी भुला दिया जाता है. संस्कारों में रची-बसी भारतीय संस्कृति का यह दुर्भाग्यपूर्ण अध्याय है. इन पर लिखते हुए मैं भी एक गलती कर रहा हूँ क्यों एक दिन वृद्धजन दिवस पर लिख रहा हूँ. क्यों साल में बार-बार इस बात का स्मरण नहीं कराता हूँ. सच है लेकिन यह दिन इसलिए चुना कि आज अंतरराष्ट्रीय दिवस वृद्धजन के बहाने लोग पढ़ तो लेंगे. खास बात यह है कि हमारे वृद्धजन लिए नहीं बल्कि बाजार का दिन है. उम्र भर लतियाते वृद्धजनों का ऐसा सम्मान किया जाएगा कि लगेगा कि कुछ हुआ ही नहीं. इसी दुर्भाग्यपूर्ण अध्याय की चर्चा कर रहा हूँ.

क्या ही हैरानी की बात है कि जिनसे हम रौशन हैं, जिनसे हमारा घर रौशन है, उनके लिए हमने एक दिन तय कर दिया है और नाम दे दिया है वृद्धजन दिवस. और इसका फलक बढ़ाकर अंतरराष्ट्रीय कर दिया है. यूरोप की मानसिकता में वृद्धजन के लिए यह सौफीसदी मुफीद हो सकता है लेकिन भारतीय सनातनी संस्कृति में वृद्धजन बेकार और बेकाम नहीं हैं लेकिन दुर्भाग्य से हमने भी यूरोपियन संस्कृति का अंधानुकरण कर उन्हें बेकार और बेकाम मान लिया है. उम्र के आखिरी पड़ाव में ठहरे वृद्धजनों के पास अनुभव है, कौशल है और है दुनियादारी की वह समझ लेकिन वे निहायत अकेले होकर वृद्धाश्रम में अपना समय गुजार रहे हैं. कितनी विडम्बना है कि एक तरफ हम सनातनी होने और संस्कार की दुहाई देते नहीं थकते और दूसरी ओर वृद्धजन की उपेक्षा और तिरस्कृत करने में पीछे नहीं हटते. आखिर क्या मजबूरी हो गई कि जिनकी छाँह में पलकर हम बढ़े हुए, वही हमारे लिए बोझ बन गए? क्यों हम उनके अनुभवों का लाभ लेकर जीवन को संवार नहीं पा रहे हैं? क्या कारण है कि उन्हें साथ रखते हुए कथित प्रायवेसी में बाधा आ रही है? सवाल अनेक हैं लेकिन सवालों के बीच अपने दुख और अहसास के बीच घुटते-घबराते वृद्धजनों की सुध कौन लेगा? क्या वृद्धाश्रम ही अंतिम विकल्प है.

वृद्धजनों को घर से बाहर निकाल देना, उनके साथ शारीरिक हिंसा करना और उन्हें अपमानित करने की खबरें अब रोजमर्रा की हो गई हैं. संवेदहीन होते समाज में वृद्धजन दिवस बाजार के लिए एक दिन है. वृद्धजनों को उत्पाद बना दिया जाएगा. दरअसल बाजार से बाहर आकर इन वृद्धजनों के टैलेंट का उपयोग करना होगा. परिवार के नालायक बच्चों ने वृद्धजनों को वृद्धाश्रम में भेज दिया है तो समाज का, सरकार का दायित्व है कि उन्हें मुख्यधारा में लाकर उनकी ना केवल प्रतिभा का सम्मान करे बल्कि उन्हें सम्मानपूर्वक जीने का हौसला दे. देशभर के शासकीय स्कूलों की हालत एक जैसी है. शिक्षकों की कमी है तो इस कमी को इन वृद्धजनों से पूरा क्यों नहीं किया जा सकता है? इन्हें स्कूलों में अध्यापन का अवसर दिया जाए.

व्यंग्य

हमारे मित्र छेदी बाबू

रवि उपाध्याय
(लेखक व्यंगकार और राजनीतिक समीक्षक हैं)

हमारे एक बहुत पुराने मित्र हैं छेदी बाबू. अब आप पूछेंगे यह कैसा नाम हुआ और इसका मतलब क्या हुआ? तो मित्रों हर नाम कुछ न कुछ कहता है. इसके पहले की मैं छेदी बाबू के नाम का अर्थ बताऊं आप यह बताएं कि टीटू, चीकू, मिट्ठू, शेरू आदि निरर्थक नाम के क्या अर्थ होते हैं. खैर छोड़िए आधुनिक समाज में 90 फीसद बातें निरर्थक होती हैं. यदि हम इस अर्थहीन बहस में पड़ेंगे तो फिर नेताओं और चमचे क्या करेंगे. यह बेकार की अंतहीन बहस उन्हें ही मुबारक.

इस तरह की बहस एक तरह से ठीक रात रात भर चलने वाले संगीत समारोह जैसी होती है . बेचारा गायक आँखें भींचे, अपने कान पर हाथ रख कर अजीब अजीब सी आवाज़ में रात रात भर एक ही लाइन को पंचम स्वर में गाता है. बाजूबंद खुल खुल जाए... बाजूबंद खुल खुल जाए. पर बाजूबंद इतना जिद्दी है कि खुलता ही नहीं आता है. गायक भाई साहब को श्रोताओं की पीढ़ा का एहसास ही नही होता. हो भी कैसे बंदा तो पहले से ही अपनी आँखें भींचे ही रहता है. सुनने वाले भी सोचते रहते होंगे कि अब घर जा कर भी क्या कर लेंगे. टिकट खरीदा है तो यही बैठे रहो कम से कम बाहर की शीत लहर से तो बचेंगे. ऐसे समारोह से स्टेटस सिंबल होता है. इसमें शामिल होने वालों को बहुत ही प्रबुद्ध और संगीत मर्मज्ञ माना जाता है.

अब बात छेदी बाबू के नाम का अर्थ की तो इसका शाब्दिक अर्थ है वह व्यक्ति जो छेद करता है. अंग्रेजी को ओढ़ने और बिछाने वालों को बता दूं कि छेदी का अंग्रेजी में बोरर कह सकते हैं. बोरर मतलब छेद करने वाला है. बोरर का हिंदी में एक अर्थ उबाऊ या नीरस करने वाला भी है. हमारे छेदी बाबू को इसलिए छेदी कहा गया है क्योंकि उनको एक व्यक्ति की बात नमक मिर्च लगा कर दूसरे तक और उससे तीसरे तक पहुंचाने में महारत हासिल है. छेदी बाबू की इस खासियत से पूरा शहर वाकफ़ि हैं. रही बात बाबू शब्द की तो यह सम्मानजनक शब्द है. इसे किसी को आदर देने के लिए उपयोग किया जाता है.

उनकी इसी विशेषज्ञता की वजह से उनसे सभी संभल कर बात करते हैं. यदि किसी को कोई बात पूरे शहर में कोई बात पहुंचानी हो तो वे बेस्ट संचार पुरूष हैं. इस मामले में वे महिलाओं के इस विशेष गुण को भी मात देने की अदभुत क्षमता रखते हैं. ऐसा नहीं है कि ऐसा करने वाले वे दुनिया में एक अकेले व्यक्ति हों. इस मामले में आदि पुरुष नारद जी को माना जाता है. वह भ्रमणशील रहते हुए सभी देवताओं से मिलते जुलते रहते हैं. ऐसा माना जाता है कि वह यहां की बात वहां और वहां की बात यहां पहुंचाने का काम करते रहें हैं. उन्हें देवताओं के संदेशवाहक कहा जाता है.

आज के जमाने में नारद जी को पत्रकार अपने आदि पुरुष मनाते हैं. नारद जयंती को देश में कई जगह पत्रकार दिवस के रूप में मनाते हैं. इस दिन को समारोह पूर्वक मनाया जाता है. ऐसा माना जाता है कि जो काम प्राचीन जमाने में नारद जी करते थे वहीं काम आजकल पत्रकार मित्र करते हैं. छेदी बाबू भी यही काम करते हैं. उनकी बातें कान भरने वाली होतीं हैं. आपको बतला दें कि कान भरने का काम पहले घरों पर नियमित रूप से हजामत करने जाने वाला नाई भी बड़ी मीठी जुबान से करते थे. वे हजामत करते समय पूरे शहर की इधर उधर की बातें पहुंचा देते थे. उनमें कुछ बातें घरों के बाहर की हुआ करतीं थीं तो कुछ बातें घरों के दरवाजों के अंदर की हुआ करतीं थीं. वह कस्बाई जासूस माने जाते थे. आजकल तो शहरों में सेलून और पार्लर बन गए हैं. वहां ऐसी बातें अब शायद नहीं होतीं हैं. वहां अब गॉसिप होते हैं. पहले जैसे, नाइयों बाली बात अब वहां नहीं होती हैं. हां अब जो नारदजी के स्वघोषित शिष्य हैं जिन्हें जर्नलिस्ट कहा जाता है. वह आज नारद जी महाराज की विरासत को भली भांति निवाह रहे हैं. वे इधर के सीक्रेट उधर और उधर के सीक्रेट इधर ट्रांसफर करते रहते हैं. ऑफ दी रिकॉर्ड अगले पल ही कानाफूसी बन सियासत में गूंजने लगतीं है. यही उनकी रोजी रोटी और बिजनेस की जरूरत होती है. इसी विधा की वज़ह से पत्रकारों को नेताओं के यहां उसी तरह का आदर और सम्मान मिलता है जैसा पुरातन काल में नारद जी को देवताओं के यहां मिलता होगा.

यही गुण हमारे मित्र छेदी बाबू में कूट कूट कर भरे हैं. इधर की बातें उधर और उधर की बातें इधर करना उनकी यूएसपी है. वे माउथ टू माउथ पब्लिसिटी के बड़े मैसेंजर माने जाते हैं. बड़ी बड़ी बोरिंग मशीनें भले ही जमीन के पेट को चीर कर पानी या तेल निकालने में नाकाम हो जाएं पर छेदी बाबू को वो महारत हासिल है जो जेम्स बॉन्ड को भी नहीं हासिल होगी, और न ही व्योमकेश बख्शी को ये कुशलता मिली होगी. छेदी बाबू हमारे कस्बे के जासूस करमचंद हैं. वो आदमी कितना ही कठिन व्यक्ति क्यों न हो छेदी बाबू उसके पेट को फाड़ कर राज़ उगलवा ही लेते हैं. उनका दावा है कि अंग्रेजों के जमाने के जेलर असरानी की तरह उनके जासूस कस्बे के चप्पे चप्पे पर मौजूद हैं.